International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 4; July 2018; Page No. 48-51

सौंदर्य का स्वरूप : भारतीय और पाश्चात्य मतों का अध्ययन

डॉ. अमिय कुमार साहु

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) एवं प्रमुख, भाषा संकाय राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला, पुणे, महाराष्ट्र, भारत।

सारांश

यह शोध-लेख, सौन्दर्य और उसके स्वरूप पर आधारित है। साधारणतः हम सौन्दर्य को वस्तु और प्राणी के बाहरी रूप का विषय मान लेते हैं। किसी भी चीज और प्राणी की सुंदरता उसके रंग, उसकी बनावट में निहित मान लिया जाता है। अगर हम सिर्फ बाह्य रूप को ही सौन्दर्य का मानदंड मान लें तो यह तर्क संगत नहीं होगा। क्योंकि कोई भी व्यक्ति या प्राणी हर समय हर देश-काल-परिस्थिति में सुंदर लगता नहीं है। देश-काल के अनुसार सौन्दर्य की परिभाषा बदलती रहती है। चाहे वह पप्राणी-जगत हो या कला-जगत; इसके बाह्य और आंतरिक रूपों में सौन्दर्य के अवस्थान को लेकर पुराने जमाने से लेकर आज तक बहुत सारे चिंतकों ने इस पर अपना मत प्रकट किया है। इन मतों का अध्ययन करना और एक नतीजे तक पहुँचना इस शोध-लेख का उद्देश्य है।

मूल शब्द : सौन्दर्य, स्वरूप, भारतीय, पाश्चात्य।

प्रस्तावना

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान के कारण आज मनुष्य असंभव को संभव करने में समर्थ हो पा रहा है और हर प्रकार की सुविधा का भागी बन गया है। आज विज्ञान प्रकृति के नियम को छोड़ कर एक जीवकोष से करोड़ों कोष वाले प्राणी बना सकता है। यह सब मनुष्य की बुद्धि का कमाल है। इसकी दाद देनी पड़ेगी की इसने मनुष्य को कहां से कहां तक पहुंचा दिया है। फिर भी विज्ञान ने मनुष्य को लाभ से ज्यादा नुकसान ही पहुंचाया है। बुद्धि पर ज्यादा बल देने के कारण मनुष्य हृदय पक्ष से छूटता गया है और जिसके कारण आज संबंधों में प्रतिकूलता आ गई है। आज वह यंत्र से प्यार कर सकता है पर वस्तु-जगत, पक्षी-जगत, मनुष्य-जगत से नहीं। मनुष्य की बुद्धि ने उसे यांत्रिक बना दिया है। वह संसार से सही संबंध जुड़ने के लिए नाकामयाब हो रहा है। जहां बुद्धि आएगी वहां तर्क आएगा, जहां तर्क आएगा वहां लाभ-हानि की चिंता होगी और वहां स्वार्थ जुड़ जाएगा। जहां स्वार्थ जुड़ेगा, वहां संबंधों में अनुकूलता नहीं आ पाएगी। इसी बुद्धि को प्रधानता देते हुए मनुष्य संसार से कटता गया है। आज मनुष्य बहुत पास-पास रहते हुए भी मन से बहुत दूर हो गया है। महादेवी वर्मा ने सही कहा है "निकट की दूरी हमारे वैज्ञानिक युग की अनेक विशेषताओं में सामान्य विशेषता बन गई है"।[1] आज मनुष्य शरीर से पास रहते हुए भी मन से, एक दूसरे से बहुत दूर है। एक छत के नीचे रहने वाले परस्पर को नहीं पहचानते। यहां तक एक परिवार के लोगों में भी अजनबीयत बढ़ती जा रही है। आज किसी को किसी से कोई संबंध है तो वह सिर्फ स्वार्थ का। हर आदमी किसी से संबंध जोड़ते हुए कुछ पाने की आस लगाए रखता है। जहां संबंध में लेन-देन की भावना रहती है, व्यवसायिकता रहती है, वहां आनंद का अनुभव नहीं हो पाता। आनंद का अनुभव तो सिर्फ देने में है, निस्वार्थ भाव से बिना प्रतिदान की सेवा करने में है। अपने लिए बची एक रोटी को किसी भूखे को देते हुए हमें आनंद की जो अनुभूति होती है शायद यह किसी दूसरे प्रकार से मिल सकता है। क्या इसी आनंद की अनुभूति में ही सौन्दर्य का अवस्थान है?

भारतीय मत

भारत में वैदिक काल से लेकर आज तक सौन्दर्य का विवेचन होता आ रहा है। सौन्दर्य के स्वरूप विवेचन के क्रम में इस पर बहुत सारे सवाल उठाए गए हैं, जैसे क्या शरीर का गुण सौन्दर्य है? क्या उसका संबंध चेतना से है? क्या सौंदर्य आत्मनिष्ठ है या वस्तुनिष्ठ? क्या सौन्दर्य इन दोनों का सामूहिक रुप है? सौन्दर्य के सही स्वरुप तक पहुंचने के लिए हमें विद्वानों के विचारों से होकर गुजरना होगा।

वैदिक सौंदर्य-धारण

भारतीय परंपरा में सौंदर्य का विशेष विवेचन वैदिक काल से चला आ रहा है। वैदिक सौन्दर्य दृष्टि आध्यात्मिक रही है। इसमें सौन्दर्य की अनुभूति को आनंद की अनुभूति के रूप में देखा गया है। इस आनंद का उदय मनुष्य में कब हुआ यह कहना कठिन है। शायद यह मनुष्य को जन्म से प्राप्त है। मानव उस आनंदमय ब्रह्म का अंश होने के कारण उसमें भी आनंद का गुण प्राप्त होता है। मनुष्य में इस आनंद की अनुभूति, सौंदर्य के अनुभूति का पर्याय है। वेद में सौंदर्य शब्द के बदले आनंद, मोह आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। डॉ फतेह सिंह का कहना है "यद्यपि प्रारंभिक वैदिक साहित्य में सुंदर, सौन्दर्य आदि शब्दों का प्रयोग भी नहीं हुआ है, परंतु वहां नंद, मोह, आमोद, प्रमोद, प्रिय आदि शब्द द्वारा जिस अनुभूति की ओर संकेत किया गया है, वह वस्तुतः वही आनंदानुभूति है, जिसे हम सौंदर्य अनुभूति मानते हैं"।[2] यदि आनंद की अनुभूति होती है तो यह प्रश्न उठता है कि आनंद मनुष्य में कहां है और उसकी अनुभूति मनुष्य को कैसे होती है। वेद के अनुसार "मानव शरीर में अमृत से आवृत्त ब्रहमपुरी या ब्रह्म की अपराजित हिरण्यपुरी है"।[3] यही हिरण्यपुरी आनंद का स्रोत है। वेदकालीन मनुष्य विश्व-जीवन में वनस्पति, पर्वत, सागर, वायु, सूर्य सभी में एक दिव्यता की झलक देखता था। उसके लिए सूर्य केवल आग का गोला नहीं था; वह समस्त संसार का मंगल करने वाला एक दिव्य शक्ति था। इस प्रकार समस्त वस्तु को दिव्य मानकर उसकी पूजा करता था; अपने को उस विराट विश्व के पीछे रहने वाली दिव्य-सत्ता के सामने समर्पित कर देता था और उसीसे उसे आनंद की अनुभूति होती थी। इसी अनुभूति में ही सौंदर्य का प्रकटीकरण होता था। वेद कालीन सौंदर्य अंतकरण का सौंदर्य था, जिसमें आध्यात्मिकता निहित थी।

रामायण में सौंदर्य का स्वरूप

समय संसार का एकमात्र सत्य है, जो हमेशा गतिमान है। समय की इस गतिमानता के साथ परिवेश भी बदलता है और परिवेश के साथ-साथ मनुष्य में भी बदलाव आता है और उसके सौंदर्य-चेतना में भी। वैदिक काल के मनुष्य की सौंदर्य-चेतना और रामायण काल के मनुष्य की सौंदर्य-चेतना में बहुत अंतर है। वेदकालीन मनुष्य

का मन जहां प्रकृति के दिव्य और आध्यात्मिक रूपों में रमण करता था, वहां रामायण युग में सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक समस्याओं से जूझता हुआ दिखाई देता है। लोगों के सामने सत्य-असत्य, नैतिक-अनैतिक आदि कितनी समस्याएं उत्पन्न हो गई थी। इन समस्याओं से टकराता हुआ वह हार रहा था। इनको एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो इनकी समस्याओं का समाधान कर सकता था। उन समस्याओं में समंजन बिठा सकता था। राम का जीवन इन समस्याओं के समाधान का प्रयास था। अतः मानव ने सारी की सारी सौंदर्य की आभा राम में ही दिखी। यहां वेदकालीन दिव्य-सौंदर्य, मानव शरीर के सौंदर्य में बदल गया। "वैदिक युग की अनुभूति को दिव्य-सौंदर्य कहें तो रामायण काल की अनुभूति को मानव-सौंदर्य कह सकते हैं"।[4] मानव के आंतरिक सौंदर्य पर ज्यादा बल दिया गया। अंतः सौंदर्य का वर्णन करते हुए रामायणकार ने सौंदर्य शब्द के बदले रमणीय, शोभन, चारु आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

शोभिताम शतश्चित्राम----
दर्शनम चित्रकुटस्य मंदाकिनाश्च शोभने।
अधिक पुरवासाच्च मनये च तवदर्शनात॥ 2-95-12

'हे शोभने तुम्हारे साहचर्य के कारण चित्रकूट और मंदाकिनी का दर्शन अयोध्या निवास से अधिक सुखकर प्रतीत होता है'।[5]

इसके साथ-साथ रामायण की सौंदर्य चेतना में शोक का भी स्थान है। राम शोक में डूबे रहकर हर विसंगति का विरोध करते हैं। राम की करुणा और शोक उदात्त होने के कारण वह आनंद की अनुभूति उत्पन्न करती है। करुणा में भी सौंदर्य की आभा फूटती है। डॉ हरिद्वारी लाल शर्मा का कहना है "आनंद की अनुभूति में राम का उदात्त शोक उसका तत्व है और सौंदर्य में करुणा को उचित स्थान देना रामायण का महत्व है"।[6]

महाभारत में सौंदर्य का स्वरूप

महाभारत का सौंदर्य कर्म और संघर्ष का सौंदर्य है, जिसमें शांत रस की एक अपूर्व धारा प्रवाहित रही है। महाभारत काल में भोग की अनंत लालसा, ऐश्वर्य का मद एक और कौरवों में है तो दूसरी ओर पांडवों के पास नीति, धर्म और मर्यादा का बंधन है। कौरव के पास भूख की लालसा, ऐश्वर्य का मद इसलिए था कि उन्हें संसार की विराटता का ज्ञान न था; जो ज्ञान अर्जुन को प्राप्त था। कृष्ण के उपदेश के माध्यम से अर्जुन को संसार के आनंद प्रवाह का ज्ञान हो गया था। संसार का रहस्य और अनंतता का ज्ञान होने के बाद व्यक्तिगत सुख-दुख, माया-मोह, जय-पराजय आदि सब तुच्छ लगता है। "जीवन में विराट दृष्टि से मोह दूर हो जाता है, आंखें उज्ज्वल और तेज युक्त, गति में वीरता और हृदय में एक अद्भुत प्रसाद का आविर्भाव होता है। व्यास ने इस गंभीर अनुभव को शांति कहा है"।[7] इस शांतता के अनुभव के बाद वह वैरागी बन जाता है; फिर वह संघर्ष करता रहता है; कर्म करता रहता है और फल की आशा नहीं रखता। कृष्ण ने गीता में कहा है 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषुकदाचन'। यहां बैरागी होने का मतलब संसार को छोड़कर पर्वत शिखर एवं वनों में रहना नहीं है। सांसारिक जीवन में रहकर संघर्ष करते हुए वैरागी होना और शांति का अनुभव करना है, जिसमें से सौंदर्य की एक अद्भुत आभा फूटती है।

भक्ति साहित्य और सौंदर्य

भक्ति साहित्य का सौंदर्य प्रपत्ति, शरणागति, आत्मसमर्पण का सौंदर्य है। वेद में परोक्ष सत्ता के जो दिव्य-सौंदर्य का वर्णन किया गया था वह अगोचर था। पर भक्ति काल में इस सत्ता को प्रत्यक्ष रुप दे दिया गया और उसमें सारा का सारा दिव्य सौंदर्य देखा गया। डॉ नगेंद्र लिखते हैं "यहां भगवान की दो रूपों की कल्पना की गई है- ऐश्वर्य रूप और माधुर्य रूप। एश्वर्य रूप में भगवान की अनंत शक्ति और अनुभूतियों का वर्णन और माधुर्य रूपों में अनेक अनुरंजक सौंदर्य का। --- उसमें दिव्य सौन्दर्य के प्रति भक्त की भावना का विवेचन तो विस्तार के साथ हुआ है किंतु भावना के विषयभूत उस दिव्य सौंदर्य का विवेचन अत्यंत विरल है"।[8] प्रत्यक्ष ढंग से चाहे ना हो, परोक्ष ढंग से भक्तों की भावना के दिव्य-सौंदर्य का वर्णन भक्ति साहित्य में जितना हुआ है, शायद उतना और किसी साहित्य में हुआ हो। सूर की गोपियां कृष्ण के लिए पागल थीं। वह भक्त थीं, प्रेमिका भी। मुरली की एक तान सुनते ही, वह काम-धाम सब छोड़ कर दौड़ पड़ती थीं। न उन्हे लोक-लाज था, ना घर का भय। उनके लिए कोई एक मात्र भगवान था तो वह थे कृष्ण। वे तो कृष्ण को सब कुछ समर्पण कर चुकी थीं। बिना प्रतिदान की आशा रखें, निस्वार्थ भाव से सेवा करती थीं; फिर उन्हें किस बात का भय था। इस प्रकार के आचरण को देख कर कोई उनको पगली कह देता तो गोपी उल्टा उस पर बरस पड़ती थीं-

'बावरी भए हैं लोग, बावरी कहत मोही'[9]

यही है भक्त की भावना के विषयभूत दिव्य-सौंदर्य जो संबंधों की दिव्यता, निस्वार्थ आत्मसमर्पण, बिना प्रतिदान की भक्ति में प्रकट हुआ है।

सौंदर्य के संबंध में आधुनिक चिंतकों का मत

भारत के आधुनिक चिंतक और साहित्यकार रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी सौंदर्य के लिए संबंधों को महत्व दिया है। इस संबंध में प्रयोजन, लाभ, क्षति का कोई हिसाब नहीं रहता; सिर्फ आनंद की अनुभूति रहती है। यह मनुष्य को भूख-प्यास, लोभ-मोह आदि से मन को ऊपर उठा देता है और उस दुनिया तक ले जाता है जहां मनुष्य एक अखंड आनंद का अनुभव करता है। रवींद्रनाथ ठाकुर लिखते हैं "क्षुधा, तृप्ति की सनक में ही जिसमें एकेश्वर न हो उठे, हमारा जिसमें उसके फंदे से कुछ अलग हो सके, सौंदर्य की ऐसी चेष्टा दिखाई पड़ती है"।[10] कुछ अलग करने के क्रम में सौंदर्य ने मनुष्य को स्थूल इंद्रिय ज्ञान से ऊपर उठाकर, प्रयोजन सिद्धि से दूर लेकर, पावन प्रेम तक पहुंचा दिया है, जिसके कारण उसने संसार के कण-कण से प्यार किया है और उसने इस संसार से किसी भी प्रकार का संबंध जुड़ा है तो वह आनंद का है। रवींद्रनाथ ठाकुर का कहना है "सौंदर्य ने हमारी प्रवृत्ति को संयत कर दिया है। जगत के साथ हमारे संबंध को केवल प्रयोजन का संबंध न रख कर आनंद का संबंध बना दिया है"।[11] आनंद का संबंध तभी बन पाता है जब मानव अपने चित को एकाग्र कर संसार से संबंध जोड़ता है। इसके बिना उसे जो आनंद मिलता है वह आनंद न होकर मद होता है। इससे जो सौंदर्य का उद्भव होता है या जिसे वह संदेश समझता है; वस्तुतः वह सच्चा सौन्दर्य न होकर उसका भ्रम होता है। अतः अंतकरण की एकाग्रता और पवित्रता से ही सौंदर्य लक्ष्मी पैदा होती है।

पाश्चात्य सौंदर्य चिंतन में सौंदर्य के बाह्य पक्ष पर ज्यादा बल देते हुए, अंतःकरण के सौंदर्य को हेय ठहराया गया है, पर ध्यान देने की बात यह है कि बाह्य-सौंदर्य तब तक व्यर्थ है जब तक मनुष्य का चित उससे ना जुड़े। प्रकृति के उपादान सुंदर इसलिए हैं कि वहां मनुष्य है; मानव का चित उनसे जुड़ा है। जब हमारा मन एक ऐसी स्थिति में रहता है जहां वह आकर्षित हो उस स्थिति में बाहरी सौंदर्य अपना प्रभाव उस पर डालता है। वह तभी उस बाहरी सौंदर्य को अपने में अनुभव करने लगता है। शुक्ल जी लिखते हैं "कुछ रूप रंग की वस्तुएं ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में परिणत हो जाते हैं। हमारी अंतःकरण की यह तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति है"।[12] शुक्ल जी ने यह तो सही कहा है कि बाहरी वस्तुएं हमारी सत्ता या मन पर अधिकार कर लेती हैं पर उन्होंने यह नहीं कहा है कि मन की वह कौन सी अवस्था है जिस अवस्था में यह काम संपर्ण होता है। यह अवस्था मन की शांत अवस्था है जब मन हर प्रकार की विषय-वासना से मुक्त रहता है। इस अवस्था में वह सौंदर्य-भावना से युक्त होकर

अपना ज्ञान खो देता है और दिव्य-सौंदर्य में निमज्जित हो जाता है। इसी सौंदर्य को एक भक्त भगवान से एकत्र होकर पाता रहता है। उसका मन सौंदर्यमय हो उठता है। वह बाहर हर एक में सौंदर्य का दर्शन करता है। पहले बाह्य-सौंदर्य अंतर को प्रभावित करता है, फिर अंतर सौंदर्यनिष्ठ होकर बाहर को भी सुंदर बनाता है। अतः "भीतर बाहर का भेद व्यर्थ है, जो भीतर है वही बाहर है"।[13] सौंदर्य चित की मुक्तावस्था का एक कमल है।

पाश्चात्य मत

पाश्चात्य सौंदर्य चिंतन का आरंभ

पाश्चात्य जगत में सौंदर्य से संबंधित विचार ईसा पूर्व 580 से प्रारंभ हो गए थे। सौंदर्य के बारे में प्रारंभिक सूत्र देने का श्रेय प्राचीन यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस और सुकरात को है। पाइथागोरस के चिंतन में सौंदर्य विषयक विचार बहुत कम प्राप्त होते हैं, पर कहीं-कहीं उनके विचार सौंदर्य स्वरूप को उद्घाटित कर जाते हैं। उनके अनुसार "विश्व दिव्य और पूर्ण है क्योंकि यह सीमित है और उसके विभिन्न भाग परस्पर क्रमबद्ध रूप से जुड़े हुए हैं। क्रमबद्धता पूर्ण और सुचारू जीवन के लिए आवश्यक है। यह क्रमबद्धता को भी हम प्राणियों के जीवन में पाते हैं। दिन के बाद रात और ऋतु के बाद ऋतु एक विशेष क्रम में आते हैं। आकाश में तारों का एक विशेष गति, सही घूमना क्रमबद्धता का परिचायक है।[14] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय दिव्य जिसका प्रयोग सौंदर्य के अर्थ में किया जा सकता है; के लिए सामंजस्य और क्रमबद्धता को महत्व दिया गया है। इनके अलावा सुकरात ने भी सौंदर्य की व्याख्या की है। उपयोगितावादी दृष्टि के अनुरूप सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए कहते हैं "जो वस्तु उपयोगी है वह उस कार्य के लिए सौंदर्यशाली है और जो वस्तु उपयोगी नहीं है उसमें सौंदर्य नहीं है"।[15] उन्होंने यह नहीं बताया कि इस उपयोगिता का आधार क्या है। शायद उपयोगिता से उनका मतलब प्रीति, आह्लाद या आनंद से होगा क्योंकि उन्होंने यह कहा है "जो नेत्रों, श्रवण के माध्यम से प्रीतिकर हो वही सुंदर है"।[16] सुकरात ने सौंदर्य के संदर्भ में 'प्रीति' शब्द का प्रयोग कर उसे अध्यात्म सौंदर्य के बहुत निकट पहुंचा दिया है।

प्लेटो और अरस्तू का मत

प्लेटो प्रत्ययवादी दार्शनिक होने के कारण प्रत्यय, विचार या प्रज्ञा में सौन्दर्य की स्थिति मानता था। इसके अलावा वह शारीरिक, मानसिक और नैतिक सौंदर्य को महत्त्व देता था। पर इसको वह क्षणस्थायी मानता था। उन्होंने प्रज्ञात्मक सौंदर्य को सबसे ऊंचा मानते हुए इससे आत्मचेतन का (जो शिव रूप है) का प्रतीक ठहराया है। आत्म-चेतन का जगत सौंदर्यबोध से कहीं ऊपर, विकारों से मुक्त, आनंद से भरा होता है। यही आत्मचैतन्य जो सौंदर्य रूप है, इसका अनुकरण प्रकृति-जगत या कला-जगत का सौंदर्य है। उन्होंने खुद कहा है "सौंदर्यवान वस्तुएं उत्पन्न होती हैं तथा समाप्त हो जाती हैं, पर यह सौंदर्य ना तो प्रारंभ ही होता है, ना समाप्त होता है। यह शाश्वत, अपरिवर्तनीय और अविनाशी है। सौंदर्यवान वस्तुएं उसी शाश्वत सौंदर्य की क्षणिक अभिव्यक्ति है"।[17] वह सौंदर्य को एक आध्यात्मिक सत्ता मानते हुए आत्मवादी सौंदर्य का सूत्रपात करते हैं, जिसका विकास हम प्लेटोनिस, अगस्टिन, मसीही आदि के विचारों में देखते हैं।

प्लेटो ने कहा था "If anything is beautiful it is beautiful for no other reason than that it partakes of absolute beauty".[18] पर उनके शिष्य अरस्तु, सौंदर्य को आध्यात्मिकता के दायरे से हटाकर कला के साथ जोड़ देते हैं। उन्होंने प्लेटो का विरोध करते हुए यह कहा कि कोई वस्तु सुंदर है, इसलिए नहीं है कि वह चरम सौंदर्य का अंश है; परंतु इसलिए है कि वह खुद श्रेय है, सुंदर है। "The beautiful is that good which is pleasant because it is good"।[19] अरस्तु का सौंदर्य-चिंतन कला और साहित्य से आगे नहीं बढ़ पाया है।

अरस्तु के बाद का ग्रीक सौंदर्य-दर्शन

अरस्तु के बाद प्लेटोनिस, लौंजाइनस आदि दार्शनिक हुए जिन्होंने अरस्तु का विरोध कर प्लेटो के सौंदर्य-चिंतन को आगे बढ़ाया। प्लेटोनिस ने सौंदर्य को कला, साहित्य के दायरे से हटाकर आध्यात्मिक और रहस्यात्मक बना दिया। वह अरस्तु के विचार का विरोध करते हुए कहते हैं "सौंदर्य दिव्य होता है तथा प्रत्यय उसमें चमकता है। वस्तु अपने आप में सुंदर नहीं होती; वरन प्रत्येय से प्रकाशित होने पर ही यह सुंदर होती है"।[20] वे किसी मूर्ति या वास्तुकला का सौंदर्य उसके मूल आधार पर नहीं मानते। पर कलाकार जिस विचार या भावना की सहायता से किसी पत्थर को सुंदर मूर्ति बना देता है, उसमें मानता है। इससे एक बात स्पष्ट रुप से कही जा सकती है कि सौंदर्य मनुष्य के प्रत्येय, विचार या भावना में स्थित है जो आध्यात्मिक और रहस्यमय है।

लोंजाइनस की किताब 'पेरी इप्सुस' में यद्यपि सौंदर्य के बारे में चर्चा नहीं है तथापि उदात्तता के बारे में इसकी चर्चा हुई है, जो सौंदर्य के बहुत निकट पड़ती है। इन्होंने उदात्तता का प्रयोग कला-साहित्य के साथ जोड़कर किया है; फिर भी उसके आध्यात्मिक पक्ष से वह बच नहीं सके। वे उदात्तता का स्रोत उत्कर्ष आत्मा में ढूंढ़ते हैं। "Sublimity is so to say, the image of greatness of soul".[21] उत्कर्ष आत्मा से उदात्तता (जिसे सौंदर्य भी कहा जा सकता है) को जोड़कर ऊन्होंने उसमें आध्यात्मिकता का संकेत भर दिया है।

मध्ययुगीन पश्चिमी सौंदर्य दर्शन

संत अगस्टिन सौंदर्य को ईश्वरीय सत्ता के रूप में देखते हैं और सौंदर्य के विधान में क्रम, अन्विति और अनुपात आदि को महत्व देते हैं। उनका मानना कि ब्रह्मांड के सारे पदार्थ एक क्रम में रहते हैं और यह ईश्वर के कारण संभव हो पाया है। उसके अनुसार "ब्रह्मांड क्रम में बढ़ता है क्योंकि ईश्वर क्रम को प्रेम करता है तथा वह उसका श्रष्टा भी है"।[22] ब्रह्मांड ईश्वर का सृजन होने के कारण उसका सौंदर्य ईश्वरीय सौंदर्य का आभास है। वह सौन्दर्य के लिए एक क्रम, सुसंगति के साथ-साथ रंगों की मधुरिमा को आवश्यक मानता है और इसकी बात करते हुए उससे एक आध्यात्मिक रहस्यमयी बाना पहना देता है। "The beauty of any material object is congruence of parts together with certain sweetness of colours... but how great will be the sweetness of the colour when the righteous shall shine forth like the sun on the kingdom of their fathers".[23]

एक्विनास जो अगस्टिन के नौ शताब्दियों के बाद आए, अगस्टिन की कुछ बातों पर सहमति प्रकट करते हुए भी सौंदर्य संबंधित कुछ मौलिक स्थापनाएं दी हैं। उन्होंने सौंदर्य की विशेषता के रूप में संपूर्णता, सामंजस्य और दीप्ति को स्थान दिया है। सारी वस्तुएं सुंदर तब होती हैं जब वे सर्वोत्तम, शुभ, ईश्वर के समान हो जाए। उनकी सबसे महत्वपूर्ण देन यह है कि वह आनंद को सौंदर्य के साथ जोड़कर देखते हैं। उनके अनुसार "सुंदर वस्तु वही है जिसकी अवधारणा आनंदपूर्वक की जाए"।[24] अतः सौंदर्य को देखने पर हमें आनंदानुभूति होती है और यह शिवत्व का एक अंग है।

आधुनिक पाश्चात्य सौंदर्य

आधुनिक पाश्चात्य जगत में सौंदर्य की दार्शनिक व्याख्या करने वालों में कांट और हीगल आगे हैं। कांट सौंदर्य को आत्मगत सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं और इसे इंद्रियबोध से भी ऊंचा, भावबोध की अभिव्यंजना मानते हैं। वे सौंदर्य को सुखवाद, उपयोगितावाद के घेरे से बाहर निकालते हुए उसमें सौंदर्य की स्थिति मानते हैं जो सिर्फ आनंददायक हो। आनंद से उनका मतलब पार्थिव आनंद से नहीं; उससे आगे उद्देश्यहीन आनंद से है। उन्होंने कहा है "सौन्दर्य प्रदत्त आनंद का लक्ष्य कोई पार्थिव आवश्यकता नहीं है"।[25] उनके विचार से अगर सौंदर्य का लक्ष्य आनंद प्रदान करना है

तो वह सबके लिए आनंद प्रदायक होगा। वे सौंदर्य को इंद्रिय, तर्क, रूचि-विशेष से मुक्त मानते हैं। उनके अनुसार "इसमें (सौंदर्य में) तर्क की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसमें किसी भी प्रकार की रुचि का कोई महत्व नहीं होता"।[26] कांट का सौंदर्य, उपयोगिता, इंद्रियोंबोध से मुक्त होकर प्रयत्यात्मक, नैतिक, सत्य स्वरूप बन जाता है। हीगल सौंदर्य की दार्शनिक व्याख्या करने में कांट से भी आगे रहे। उनका सौंदर्य-चिंतन सर्वोच्च चेतना की आधार-भूमि पर स्थित है। यह सर्वोच्च चेतना प्रत्यभिज्ञा दर्शन के शिवरूप के बहुत निकट पड़ती है। उन्होंने मनुष्य में इस चेतना के सौंदर्य को सबसे श्रेष्ठ माना है। वे बाह्य और प्राकृतिक सौंदर्य को आत्मगत सौंदर्य की छाया मानते हुए कहते हैं "Thus the higher truth is spiritual being that has attained a shape adequate to the conception of spirit".[27] वे इस चेतन सौन्दर्य को किसी बाह्य प्रभाव से मुक्त और स्वतंत्र मानते हैं। वे उस सौंदर्य का आरोप प्रकृति पर करते हुए भी प्रकृति-सौंदर्य को ज्यादा महत्व न देते हुए कलागत-सौंदर्य को महत्व देते हैं। वे सौन्दर्य की सही सिद्धि कला में देखते हैं। कलागत-सौंदर्य, प्रकृतिगत-सौन्दर्य से आगे मानव आत्मा के सौंदर्य को वह श्रेष्ठ मानते हैं। क्योंकि वह परम सत्ता का प्रतिरूप है। हीगेल के विचारों में सौंदर्य के दार्शनिक व्याख्या की चरम परिणति दिखाई देती है।

निष्कर्ष

चाहे भारत के विद्वान हो या पाश्चात्य सभी ने भाषा की थोड़ी सी हेरफेर से सौंदर्य को शुद्ध-चित, दिव्य-चित या आत्म-चैतन्य में देखा है, जो परमात्मा स्वरूप है। सभी ने बाह्य या रूपगत सौन्दर्य से ज्यादा, आत्मगत-सौन्दर्य को श्रेष्ठ माना है। जब मनुष्य अपना चित परमात्मा से जोड़ता है तब उसे सौंदर्य की अनुभूति होती है और फिर वह चिर आनंद के सागर में गोते लगाता रहता है।

सन्दर्भ

1. शरद ओमकार, महादेवी साहित्य; सेतु प्रकाशन, झांसी 1985 पृ 125
2. सिंह फतह, भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2 पृ18
3. सिंह फतह, भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2 पृ 18
4. शर्मा हरदवारीलाल, सौदर्यशास्त्र; मधु प्रकाशन, इलाहाबाद-1 1979 पृ21
5. नगेन्द्र, भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2 1978 पृ38-39
6. शर्मा हरदवारीलाल, सौदर्यशास्त्र; मधु प्रकाशन, इलाहाबाद-1 1979 पृ22
7. शर्मा हरदवारीलाल, सौदर्यशास्त्र; मधु प्रकाशन, इलाहाबाद-1 1979 पृ23
8. नगेन्द्र, भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2 1978 पृ 62-63
9. गुप्ता आशा, भक्ति सिद्धान्त; पृ 16
10. भण्डारी मनु, अजीत कुमार, संकल्प का सौंदर्यशास्त्र; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-2 1997 पृ 13
11. भण्डारी मनु, अजीत कुमार, संकल्प का सौंदर्यशास्त्र; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-2 1997 पृ14
12. भण्डारी मनु, अजीत कुमार, संकल्प का सौंदर्यशास्त्र; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-2 1997 पृ17
13. भण्डारी मनु, अजीत कुमार, संकल्प का सौंदर्यशास्त्र; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-2 1997 पृ17
14. वाजपेयी सुनरित कुमार, पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास; राधा पब्लिशर्स, नई दिल्ली-2 1996 पृ12
15. वाजपेयी सुनरित कुमार, पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास; राधा पब्लिशर्स, नई दिल्ली-2 1996 पृ 15
16. नगेन्द्र, भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2 1978 पृ20
17. वाजपेयी सुनरित कुमार, पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास; राधा पब्लिशर्स, नई दिल्ली-2 1996 पृ 17
18. नरसिंहाचारी, सौंदर्यातत्व निरूपण; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-7 1977 पृ 28
19. Busanquet B. History of Aesthetics; Oxford University Press, London, 1949 Pg.63.
20. वाजपेयी सुनरित कुमार, पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास; राधा पब्लिशर्स, नई दिल्ली-2 1996 पृ 60
21. Busanquet B, History of Aesthetics; Oxford University Press, London, 1949 Pg.105.
22. वाजपेयी सुनरित कुमार, पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास; राधा पब्लिशर्स, नई दिल्ली-2 1996 पृ94
23. Busanquet B. History of Aesthetics; Oxford University Press, London, 1949 Pg.135-136
24. भण्डारी मनु, अजीत कुमार, संकल्प का सौंदर्यशास्त्र; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-2 1997 पृ 178
25. राजकुमारी, पंत की सौन्दर्य चेतना का विकास; जीवन ज्योति प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980 पृ 40
26. वाजपेयी सुनरित कुमार, पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास; राधा पब्लिशर्स, नई दिल्ली-2 1996 पृ 177
27. Busanquet B. History of Aesthetics; Oxford University Press, London, 1949 Pg.473.